गांवों में यह भी देखने में आता है कि वहां विशेषाधिकार, सम्पत्ति एवं शक्ति एक ही व्यक्ति में केन्द्रित होती हैं तथा सामाजिक दृष्टि से पद-दलित लोग न केवल आर्थिक दृष्टि से बल्कि राजनीतिक दृष्टि से भी विविध साधनों एवं सुविधाओं से वंचित रहते हैं। यहां आनुवंशिक सिद्धान्त पर विशेषतः जोर दिए जाने के कारण सामाजिक विभेद और भी बढ़ जाते हैं। ऐसी स्थिति में समाज को समतावादी आधार पर निर्मित करने में कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। ऐसी दशा में विकास एवं सुधार कार्यों में लगे लोगों का संस्तरणात्मक प्रणाली के शिखर पर बैठे समूहों को छोड़कर उन लोगों तक पहुंचना जिनके लाभ के लिए योजनाएं बनाई गई हैं, बहुत कठिन है, परिणामस्वरूप विकास कार्यक्रमों एवं किसी भी नवीन योजना का लाभ साधारणतः उन्हीं लोगों को मिल पाता है जो पहले से सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टि से सम्पन्न हैं।

आन्द्रे बिताई[1] ने बताया है कि **मलाबार में कृषिक संस्तरण की प्रणाली और जातियों की संस्तरण प्रणाली एक-दूसरे से काफी निकट और सम्बन्धित पाई गई।** साधारणतः अकृषक भू-स्वामी जातियों की प्रस्थिति सबसे उच्च होती है, इसके नीचे कृषि करने वाली और दस्तकारी का काम करने वाली जातियां आती हैं और सबसे नीचे कृषि श्रमिकों की जातियां। ग्रामीण स्तर पर प्रभुत्वशाली भू-स्वामी समूह की स्थिति जाति संस्तरण की प्रणाली में शिखर पर नहीं होकर मध्य में थी। भारत में नवीन राजनीतिक व्यवस्था ने इन प्रभुत्व सम्पन्न कृषक जातियों के महत्व को और भी बढ़ा दिया है। वयस्क मताधिकार ने इनकी शक्ति को बढ़ाने में विशेष योग दिया है। कृषि-संस्तरण के निम्नतर स्तर पर बटाईदार और भूमिहीन कृषि श्रमिक आते हैं जो साधारणतः निम्न या अस्पृश्य जातियों से सम्बन्धित हैं। कृषिक क्षेत्र में हो रहे परिवर्तनों की ओर संकेत करते हुए आन्द्रे बिताई[2] ने बताया है कि वयस्क मताधिकार तथा ग्राम पंचायतों की स्थापना से गांव में केवल भू-स्वामित्व तथा परम्परागत प्रस्थिति ही शक्ति के आधार नहीं रहे हैं। संगठित संख्या की शक्ति अब इतनी महत्वपूर्ण बन गई है जितनी पहले कभी नहीं थी। इसके उपरान्त भी भूमिहीन लोगों के पास शक्ति बहुत कम हो गई है, चाहे उनकी संख्या कितनी ही ज्यादा क्यों न हो। साधारणतः हुआ यह है कि कृषक भू-स्वामियों—मध्यम और बड़ों—को अकृषक भू-स्वामियों की कीमत पर शक्ति प्राप्त करने की दृष्टि से कुछ लाभ मिला है। कहने का तात्पर्य यह है कि कृषक भू-स्वामियों की शक्ति सापेक्ष रूप से बढ़ी है, परन्तु भूमिहीन लोगों की स्थिति में इस दृष्टि से कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया है।

ग्रामीण भारत में भूमि व्यवस्था एवं कृषक सम्बन्ध
(AGRARIAN RELATIONS AND LAND TENURE IN INDIA)

किसी भी देश में कृषक सम्बन्धों की प्रकृति क्या होगी, यह वहां की भूमि व्यवस्था पर निर्भर है। जिस प्रकार की भूमि व्यवस्था होती है, कृषि कार्यों में संलग्न व्यक्तियों के बीच सम्बन्ध भी उसी के अनुरूप होते हैं। अतः भारत में कृषक सम्बन्धों को समझने के लिए यहां प्रचलित भूमि व्यवस्था को जान लेना आवश्यक है।

भूमि व्यवस्था का अर्थ (Meaning of Land Tenure)

भूमि व्यवस्था से अर्थ (i) भूमि के स्वामी, (ii) भूमि को जोतने वाले का भूमि के प्रति कर्तव्य, अधिकार एवं दायित्व तथा (iii) मालगुजारी देने के लिए राज्य से सम्बन्ध की व्याख्या

1 Andre Betille, *op. cit.*, p. 71.
2 *Ibid.*, p. 74.

से है। दूसरे शब्दों में, यह भी कह सकते हैं कि भूमि पर स्थायी मलिकाना हक किस व्यक्ति का है? उस पर खेती वास्तव में कौन करता है? तथा उस भूमि पर लगान निर्धारित करने की रीति क्या है? यह तीनों बातें मिलकर भूमि व्यवस्था को बताती हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि **भूमि व्यवस्था से अर्थ उस व्यवस्था से है जिसके अनुसार भूमि का स्वामित्व, अधिकार एवं दायित्व निर्धारित किए जाते हैं।**

एक आदर्श भूमि व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जिसमें यह गुण हों—(1) भूमि पर जोतने वाले का स्वामित्व होना चाहिए। (2) लगान उचित मात्रा में लिया जाना चाहिए। (3) भूमि के हस्तान्तरण की स्वतन्त्र व्यवस्था होनी चाहिए। (4) जोतों की सीमा निर्धारित होनी चाहिए।

स्वतन्त्रता के समय भारत में भूमि व्यवस्था (Land Tenures at the Time of Independence)

स्वतन्त्रता के समय सन् 1947 में भारत में विभिन्न प्रकार की भूमि व्यवस्था पाई जाती थी जिनको तीन प्रमुख व्यवस्थाओं में बांटा जा सकता है—(I) रैयतवारी, (II) महालवारी एवं (III) जमींदारी। ऐसा अनुमान है कि कुल कृषि क्षेत्र का 52 प्रतिशत भाग रैयतवारी में, 40 प्रतिशत भाग जमींदारी में व शेष महलवारी व अन्य व्यवस्थाओं में था।

(I) **रैयतवारी व्यवस्था** (Ryotwari System)—इस प्रणाली में भूमि पर स्वामित्व राज्य का होता था, किन्तु व्यवहार में प्रत्येक रजिस्टर्डधारी (रैयत) स्वामी होता था। जब तक वह भूमि पर राज्य को नियमित रूप से कर देता रहता था उसे बेदखल नहीं किया जा सकता था। उसको भूमि को काम में लेने, उसे बेचने या हस्तान्तरित करने या किसी अन्य प्रकार से उपयोग में लाने का अधिकार होता था। भूमि पर मालगुजारी का निर्धारण राज्य द्वारा 20-30 वर्ष के पश्चात् भूमि की उर्वरा शक्ति तथा उपज के अनुसार तय किया जाता था।

(II) **महालवारी व्यवस्था** (Mahalwari System)—इस प्रणाली में सरकार द्वारा पूरे वर्ष के लिए एक रकम मालगुजारी के रूप में तय कर दी जाती थी जिसको देने का उत्तरदायित्व गांवों के सभी भू-स्वामियों का होता था जिन्हें सहभागी कहते थे और महाल का अर्थ ग्राम है। चूंकि भूमि पर समस्त ग्राम का स्वामित्व होता था इसलिए इसे महालवारी व्यवस्था कहते हैं। जो भूमि गांव में खाली होती थी उस पर ग्राम समाज का अधिकार होता था। गांव का लम्बरदार मालगुजारी एकत्रित करता था जिसके लिए उसको कमीशन मिलता था। सहभागी को अपनी इच्छानुसार भूमि को प्रयोग में लाने का अधिकार होता था। उसकी भूमि उसके परिवार की निजी सम्पत्ति मानी जाती थी। यदि कोई सहभागी उस भूमि को छोड़ देता था तो उस पर ग्राम समाज का अधिकार माना जाता था।

(III) **जमींदारी व्यवस्था** (Zamindari System)—इस प्रणाली में जमींदार भूमि का स्वामी माना जाता था तथा भूमि सम्बन्धी सभी अधिकार उसी के हाथ में होते थे। सरकार से कृषक का सीधा सम्बन्ध नहीं होता था, बल्कि एक मध्यम वर्ग के माध्यम से होता था जिसे जमींदार कहते थे। इस प्रकार भूमि को जोतने वालों का भूमि में स्वामित्व नहीं होता था। जमींदार द्वारा उन कृषकों को हटा दिया जाता था जो कम लगान देते थे और उनकी भूमि उन व्यक्तियों को दे दी जाती थी जो अधिक लगान देते थे। इससे किसान के मन में अस्थिरता रहती थी।

भूमि सुधार
(LAND REFORMS)

कृषि क्षेत्र में जहां एक ओर कुछ लोगों के पास भूमि काफी अधिक मात्रा में पाई जाती है, वहां दूसरी ओर बहुत से लोग इससे पूर्णतः वंचित हैं। परिणाम यह हुआ कि एक ओर जमींदारों और दूसरी ओर किराये पर भूमि जोतने वाले काश्तकारों तथा भूमिहीन श्रमिकों के बीच असमानता की खाई बहुत बढ़ गई है। देश के स्वतन्त्र होने के पश्चात् लोगों का ध्यान असमानता के इन विपरीत छोरों की ओर गया। फलस्वरूप स्वतन्त्र भारत में ऐसा संविधान लागू किया गया जो जातिविहीन तथा वर्गविहीन समाज के लिए प्रतिबद्ध था। यहां सोचा गया कि भूमि सुधारों के प्रयासों से सामाजिक और आर्थिक असमानताओं को समाप्त अथवा कम किया जा सकेगा। इसी दृष्टि से भारत में भूमि सुधार के अनेक प्रयत्न हुए।

भूमि सुधार का अर्थ एवं उद्देश्य (Meaning & Objectives of Land Reforms)

भूमि सुधार (Land Reforms) का अर्थ दो प्रकार से लगाया जाता है : संकुचित व विस्तृत। **संकुचित अर्थ में, "भूमि सुधार से अर्थ छोटे कृषक एवं कृषि श्रमिकों के लाभ के लिए भूमि स्वामित्व के पुनः वितरण से है।"** लेकिन विस्तृत अर्थ में, "भूमि सुधार से अर्थ किसी संगठन या भूमि व्यवस्था (Land tenures) की संस्थागत व्यवस्था में होने वाले प्रत्येक परिवर्तन से है।" इस प्रकार भूमि सुधार में समस्त कार्य शामिल कर लिए जाते हैं जिनका सम्बन्ध भूमि स्वामित्व (Land Ownership) एवं भूमि जोत (Land holding) दोनों में होने वाले सुधारों से है। इसमें लगान कानून, लगान निर्धारण एवं उनकी वसूलयाबी, मध्यस्थों का उन्मूलन, जोतों की सुरक्षा, अधिकतम व न्यूनतम भूमि सीमा निर्धारण, सहकारी खेती, चकबन्दी, आदि सभी शामिल हैं। भूमि सुधार निम्न उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किया जाता है :

(1) **उत्पादन में वृद्धि**—भूमि सुधार कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य कृषि उत्पादन को बढ़ाना है। यह उत्पादन वृद्धि सहकारी खेती, चकबन्दी, गहन खेती, आदि के माध्यम से प्राप्त की जा सकती है।

(2) **सामाजिक न्याय**—भूमि सुधार का दूसरा उद्देश्य सामाजिक न्याय है जिससे कि भूमिहीनों एवं वास्तविक काश्तकारों को भूमि मिल सके तथा आय में समानता लायी जा सके।

(3) **राजनीतिक उद्देश्य**—भूमि सुधार का तीसरा उद्देश्य राजनीतिक है जिसके अन्तर्गत ग्रामीण जन समूह को अपने पक्ष में करने के लिए इस प्रकार की योजनाएं बनाई जाती हैं और कार्यरूप में परिणत की जाती हैं।

भारत में भूमि सुधारों की आवश्यकता या महत्व (Need or Importance of Land Reforms in India)

भारत में भूमि सुधार की आवश्यकता या महत्व को दर्शाने के लिए निम्न विचार व्यक्त कर सकते हैं :

(1) **कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए**—स्वतन्त्रता के समय एवं उसके पश्चात् भारत में कृषि पदार्थों की बड़ी कमी थी। अतः इस बात की आवश्यकता महसूस की गई कि कृषि का उत्पादन बढ़ाने के लिए भूमि सुधार कार्यक्रम लागू किए जाएं।

(2) **नियोजित विकास के लिए**—देश में नियोजित विकास को बढ़ावा देने के लिए यह आवश्यक समझा गया कि भूमि सुधार किये जाएं।

(3) **सामाजिक न्याय एवं समानता के लिए**—स्वतन्त्रता के पश्चात् सामाजिक न्याय दिलाने के लिए यह उचित समझा गया कि आधिक्य भूमि को भूमिहीनों में वितरित कर दिया जाए।

(4) **गैर-कृषि उद्योगों के विकास के लिए**—भारत में भूमि सुधार की आवश्यकता इस कारण भी पड़ी कि उद्योगों के विकास के लिए धन एवं कच्चा माल कृषि से ही मिल सकता है।

भूमि सुधारों की आवश्यकता पर बल देते हुए **डॉ. राधाकमल मुखर्जी** ने अपनी पुस्तक '*Land Problems in India*' में लिखा था कि "वैधानिक कृषि तथा सहकारिता को हम कितना ही अपना लें, पूर्ण सफलता हमें तब तक नहीं मिलेगी जब तक कि हम भूमि व्यवस्था में वांछित सुधार नहीं कर देते।" **प्रो. सैम्युलसन** (Samuelson) के अनुसार, "**सफल भूमि सुधार के कार्यक्रमों ने अनेक देशों में (साहित्यिक भाषा में) मिट्टी को सोने में बदल दिया है।**"

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत में भूमि सुधार नीति (Land Reforms Policy in India after Independence)

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय विभिन्न प्रकार की भूमि व्यवस्थाएं थीं जिसके परिणामस्वरूप काश्तकार एवं भूमि स्वामी के बीच कई मध्यस्थ आ गए थे जो भूमि उपज का एक बड़ा भाग लगान के रूप में लेते थे, लेकिन फिर भी काश्तकार को प्रतिवर्ष जोतने की गारण्टी नहीं देते थे जिससे भूमि में स्थायी सुधार नहीं हो पाता था। साथ ही खेत के छोटे होने से उत्पादन भी कम होता है। अतः स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् सरकार का ध्यान इस ओर गया।

प्रथम योजना में राज्यों द्वारा भूमि सुधार योजना की रूपरेखा बनाने के लिए कहा गया था, जबकि दूसरी योजना में मध्यस्थ किरायेदारों की समाप्ति, काश्तकारी व्यवस्था में सुधार, भूमि की उच्चतम सीमाओं का निर्धारण, चकबन्दी और कृषि व्यवस्था के पुनर्गठन की बात कही गई, लेकिन **तीसरी, चौथी** व **पांचवीं योजना** में भूमि सुधार कार्यक्रमों को तेजी से लागू करने पर जोर दिया गया। **छठवीं योजना** में यह व्यवस्था की गई : (i) जिन राज्यों में भूमिहीन कृषकों को मालिकाना हक देने के नियम नहीं हैं वहां नियम बनाये जायेंगे। (ii) अधिकतम सीमा कानून लागू होने से जो अतिरिक्त भूमि सरकार के अधिकार में आ गई है उसे वितरित किया जाएगा। (iii) भूमि सम्बन्धी आंकड़ों को संकलित करने एवं उन्हें अद्यतन करने के लिए एक कार्यक्रम लाया जायेगा। (iv) चकबन्दी का कार्यक्रम चलाया जायेगा। (v) भूमिहीन श्रमिकों के मकानों के लिए स्थान की व्यवस्था की जायेगी। **सातवीं योजना** में वर्तमान भूमि कानूनों को कड़ाई से लागू करने की बात कही गई थी। **आठवीं योजना** में भूमि सुधार के पांच सिद्धान्तों का पालन करने की बात कही गई है। यह सिद्धान्त हैं—मध्यस्थों का अन्त, काश्तकारी सुधार, अतिरिक्त भूमि का पुनः वितरण, चकबन्दी व भूस्वामित्व रिकार्ड को अद्यतन करना।

भारत में भूमि सुधार के लिए उठाये गए कदम

(EFFORTS MADE FOR LAND REFORMS IN INDIA)

पिछले वर्षों में भूमि सुधार के काफी प्रयत्न किए गये हैं जिनके फलस्वरूप अग्रांकित कार्यक्रम लागू किए गये हैं :

(I) मध्यस्थों एवं जमींदारों का उन्मूलन (Abolition of Intermediaries and Zamindars)

(II) काश्तकारी व्यवस्था में सुधार (Reforms in Tenancy System)

(III) जोतों की अधिकतम सीमा-निर्धारण (Ceiling on Holdings)

(IV) कृषि का पुनर्गठन (Reorganisation of Agriculture)—(1) चकबन्दी, (2) सहकारी खेती, (3) भूदान, (4) भूस्वामित्व का रिकार्ड।

अब इन सभी की एक-एक करके विस्तृत विवेचना की जाएगी।

(I) मध्यस्थों एवं जमींदारों का उन्मूलन (Abolition of Intermediaries and Zamindars)

भूमि सुधार प्रयत्नों में सबसे पहला प्रयत्न मध्यस्थों व जमींदारों की समाप्ति के लिए किया गया। इस सम्बन्ध में चेन्नई में 1948 में; मुम्बई व हैदराबाद में, 1949-50 में; मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश व असम में 1951 में; पंजाब, राजस्थान व उड़ीसा में 1952 में तथा हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक व पश्चिमी बंगाल में 1954-55 में सम्बन्धित अधिनियम पारित किए गए। इन विभिन्न राज्य अधिनियमों के अन्तर्गत अब तक दो करोड़ से अधिक काश्तकारों का राज्य के साथ सीधा सम्बन्ध हो गया है और उनको मालिकाना हक दे दिए गए हैं तथा 60 लाख हेक्टेयर भूमि भूमिहीन कृषकों को वितरित की जा चुकी है।[1]

विभिन्न राज्य सरकारों ने जमींदारी उन्मूलन के लिए जो अधिनिमय बनाये थे उनमें निम्न विशेषताएं थीं :

(1) **अधिकारों का उन्मूलन एवं क्षतिपूर्ति**—जम्मू एवं कश्मीर राज्य को छोड़कर शेष सभी राज्यों में जमींदारों के अधिकारों का उन्मूलन कर दिया गया है और इसके बदले में उनको मुआवजा या क्षतिपूर्ति दी गई है।

(2) **क्षतिपूर्ति का आधार**—जमींदारों को क्षतिपूर्ति का आधार अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग रखा गया; जैसे उत्तर प्रदेश में आधार शुद्ध सम्पत्ति रखा गया था जबकि असम, राजस्थान एवं मध्य प्रदेश में 'शुद्ध आय' था। कुछ राज्यों में बड़े जमींदारों को निम्न दर से व छोटे जमींदरों को ऊंची दर से क्षतिपूर्ति की गई। कुछ राज्यों में क्षतिपूर्ति तो एक-सी दर से दी गई, लेकिन छोटे जमींदारों को पुनर्वास हेतु, अतिरिक्त अनुदान दिए गए।

(3) **क्षतिपूर्ति का भुगतान**—क्षतिपूर्ति का भुगतान कुछ राज्यों द्वारा पूर्णतः नकदी में किया गया, जबकि कुछ राज्यों द्वारा नकदी व बॉण्डों में। जिन राज्यों में बॉण्डों में भुगतान किया गया उन्होंने अपने राज्यों में 'जमींदारी उन्मूलन कोष' की स्थापना की। इस कोष में उस रकम को जमा किया गया जो कृषक ने भूमिधारी काश्तकार बनने के लिए सरकार को दी थी।

(4) **वैयक्तिक कृषि के लिए भूमि रखने की छूट**—विभिन्न अधिनियमों में यह व्यवस्था भी की गई थी कि जो जमींदार जितनी भूमि को स्वयं जोतते थे उसे उनके पास ही छोड़ देने की छूट थी।

---
1 **भारत**, 1999, पृ. 454.

(5) **सामान्य भूमि पर राज्य सरकारों का अधिकार**—जमींदारी उन्मूलन के पश्चात् गांव की सामान्य भूमि (जैसे, बंजर भूमि, वन, हाट की भूमि, चरागाह की भूमि, आदि) बची सब पर राज्य सरकारों का अधिकार हो गया।

(6) **लगान देने का दायित्व**—इन अधिनियमों में यह व्यवस्था भी की गई थी कि जमींदारी उन्मूलन के पश्चात् काश्तकार या आसामी अपने भूमि पर लगान सीधा ही सरकार को देगा और लगान देने की उसकी स्वयं की जिम्मेदारी होगी।

(7) **जमींदारी पुनः पनपने पर प्रतिबन्ध**—इसके लिए अधिनियमों में यह व्यवस्था की गई कि प्रत्येक काश्तकार के लिए भूमि को स्वयं ही जोतना अनिवार्य होगा, लेकिन विधवा, फौज में कार्य करने वाले सेविवर्ग, बन्दी व रोग से पीड़ित व्यक्ति अपनी भूमि को लगान पर दूसरों को उठा सकते हैं।

उत्तर प्रदेश में जमींदारी उन्मूलन

उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन में अग्रणी है। उत्तर प्रदेश की विधान ने 8 अगस्त, 1947 को एक प्रस्ताव पास किया कि जमींदारी का उन्मूलन कर दिया जाए और इस कार्य के लिए एक समिति पं. गोविन्द बल्लभ पन्त की अध्यक्षता में बनाई गई जिसने अपनी रिपोर्ट अगस्त 1948 में दे दी। इस समिति की सिफारिशों के आधार पर एक विधेयक 7 जुलाई, 1949 को प्रस्तुत किया गया जो 16 जनवरी, 1951 को पास हो गया, लेकिन उत्तर प्रदेश के कुछ जमींदारों ने न्यायालयों की शरण ले ली। अन्त में 5 मई, 1952 को सर्वोच्च न्यायालय ने इस अधिनियम को वैध घोषित कर दिया जिसके फलस्वरूप राज्य सरकार ने 1 जुलाई, 1952 को राज्य की कृषि जमींदारियों की भूमि का स्वामित्व अपने हाथ में ले लिया।

उत्तर प्रदेश में 30 जून, 1952 को जमींदारों के पास 4.13 करोड़ एकड़ भूमि थी जिसमें से 3.9 करोड़ एकड़ भूमि ही सरकार द्वारा लेने का निश्चय किया गया। क्षतिपूर्ति की मात्रा शुद्ध आय का 8 गुना रखी गई। जमींदारों की कुल संख्या 30 लाख आंकी गई जिनमें से 90 प्रतिशत जमींदार तो केवल नाममात्र के ही जमींदार थे जो 25 रुपये वार्षिक से भी कम लगान देते थे। केवल 30,000 जमींदार (अर्थात् कुल जमींदारों की संख्या का 1.5 प्रतिशत) ही 250 रुपये वार्षिक से अधिक लगान देते थे। इस 30,000 की संख्या में 5,000 जमींदार 1,000 रुपये तक लगान देते थे तथा 400 ऐसे थे जो 10,000 रुपये से अधिक लगान देते थे। कुल क्षतिपूर्ति 160 करोड़ रुपये आंकी गई थी।

इस अधिनियम ने चार प्रकार के कृषकों को जन्म दिया—(1) **भूमिधर**—वे काश्तकार जो अपने वर्तमान लगान का 10 गुना सरकारी खजाने में जमा कर देंगे उन्हें भूमिधर कहा जाएगा। भविष्य में उनको लगान नहीं देना होगा, लेकिन मालगुजारी देनी होगी जो वर्तमान लगान की आधी होगी। (2) **सीरदार**—जो काश्तकार 10 गुना जमा न करना चाहें वे सीरदार कहलायेंगे और सरकार को वही लगान देते रहेंगे जो जमींदार को देते थे। (3) **अधिवासी**—वे काश्तकार जो उप-किसान के रूप में कार्य करते थे अधिवासी कहलायेंगे। इनको अपनी खेती की जमीनों को पांच वर्ष तक रखने का अधिकार दिया गया। इसके पश्चात् 15 गुना लगान देकर सीरदार बन सकते थे। (4) **आसामी**—यह वे व्यक्ति थे जो वन भूमि, रहन, बगीचों की भूमि, आदि पर खेती करते थे। उनके अधिकार स्थायी नहीं होते थे।

राजस्थान में जमींदारी उन्मूलन

राजस्थान में काश्तकारी के विभिन्न स्वरूप प्रचलित रहे हैं। इन्हें काश्तकारों के हित में परिवर्तित करने, किराये की राशि निर्धारित करने तथा जमींदारी उन्मूलन के उद्देश्य से बनाये गए, प्रमुख अधिनियम इस प्रकार हैं :

1. राजस्थान भूमि सुधार और जागीरी पुनर्ग्रहण अधिनियम, 1952
2. राजस्थान काश्तकारी उन्मूलन अधिनियम, 1955
3. जमींदारी तथा बिसवादारी उन्मूलन अधिनियम, 1955

भूमि सुधार और जागीरी पुनर्ग्रहण अधिनियम, 1952 की धारा 9 के अन्तर्गत जागीर क्षेत्र में जो भी किसान था उसको खातेदार घोषित किया गया। जागीरदारों के पुनर्वास के लिए उन्हें स्वयं काश्त की भूमि में आबंटन हेतु प्रावधान धारा 15 व 16 में किए गए। राजस्थान सरकार द्वारा जागीरदारों को उनकी जागीर अधिग्रहण के फलस्वरूप मुआवजा दिया गया।

सामन्तों की भूमि का अधिग्रहण करने के साथ-साथ भूदान आन्दोलन भी प्रारम्भ किया गया। सन् 1955 में राजस्थान भूदान यज्ञ बोर्ड का गठन किया गया जिसके अध्यक्ष गोकुला भाई भट्ट थे। कृषि भूमियों के उपयोग के सम्बन्ध में भी एक कानून 1954 में जारी हुआ जिसके अन्तर्गत जिलाधीशों को अधिकार दिए गए कि जिन भूमियों पर दो वर्ष से खेती नहीं हो रही हो, उनके मालिकों को नोटिस दें कि भूमि पर खेती का प्रबन्ध करें और ऐसी भूमि को किसानों को पट्टे पर देने का अधिकार भी तहसीलदार को दिया गया।

राजस्थान काश्तकारी अधिनियम, 1955 (Rajasthan Tenancy Act, 1995) की धारा 15वीं क्रान्तिकारी है क्योंकि इस धारा के अन्तर्गत जो भी किसान अस्थायी तौर पर किसी भूमि पर काश्त (खेती) कर रहा था, 15 अक्टूबर, 1955 से स्वतः ही वह खातेदार हो गया। इसके लिए उसे आवेदन की आवश्यकता नहीं थी। इस प्रकार लाखों किसानों को जो अस्थायी रूप से भूमि पर काबिज थे, काश्त कर रहे थे, स्थायी खातेदार के अधिकार मिल गए।

कृषि भूमि पर सीलिंग सम्बन्धी कानून सन् 1963 से प्रभावी हुआ। पूरे देश में सीलिंग कानून को समान आधार पर बनाने के उद्देश्य से 1973 में एक नया कानून 'राजस्थान कृषि भूमि सीलिंग अधिनियम, 1973' लागू हुआ। इस कानून द्वारा सीलिंग की सीमा दो फसली सिंचित भूमियों के लिए 18 एकड़, एक फसली सिंचित भूमि के लिए 27 एकड़ और बाकी असिंचित भूमियों के लिए 48 एकड़ से 175 एकड़ तक निर्धारित की गई। राजस्थान सीलिंग कानून के अन्तर्गत जो भूमि अधिग्रहण की गई है, वह घटिया किस्म की है। अतः जिन लोगों को ऐसी भूमि आबंटित की जाती है, उन्हें भूमि के विकास के लिए अनुदान भी उपलब्ध कराया जाता है।

धूल सिंह[1] ने राजस्थान में भूमि-सुधारों सम्बन्धी अपने अध्ययन के आधार पर बताया है, कि मध्यस्थों की समाप्ति और काश्तकारी अधिनियम के क्रियान्वयन की सम्पूर्ण प्रक्रिया ग्रामीण राजस्थान में एक 'सामाजिक क्रान्ति' (Social Revolution) से कुछ भी कम नहीं थी।

1 Dholl Singh, '*A Study of Land Reforms in Rajasthan*, Birla College, Pilani' quoted by S. M. Shah in his book, *Rural Development, Planning and Reforms*, pp. 110-11.

जमींदारी उन्मूलन ग्रामीण क्षेत्रों के लिए निम्न प्रकार से लाभकारी रहा है :

(1) **शोषण का अन्त**—जमींदारों द्वारा काश्तकारों का शोषण किया जाता था, उसका अन्त जमींदारी उन्मूलन से हो गया है और अब इनके द्वारा न बेगार ली जाती है और न उपहार। (2) **उत्पादन में वृद्धि**—जमींदारी उन्मूलन से करोड़ों काश्तकारों को भूस्वामित्व के अधिकार मिल गए हैं जिससे वे अब कृषि भूमि में स्थायी सुधार करने लगे हैं और मन लगाकर काम करने से उत्पादन में भी वृद्धि हुई है। (3) **सरकारी आय में वृद्धि**—जमींदारी उन्मूलन से सरकारी आय में भी वृद्धि हुई है। 1951-52 में सरकार को 48 करोड़ रुपये लगान के रूप में मिलते थे, लेकिन वर्तमान में यह आय 700 करोड़ रुपये की हो गई। (4) **कृषकों का सरकार से प्रत्यक्ष सम्बन्ध**—अब कृषकों का सरकार से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो गया है जिससे उनको सरकारी सहायता मिलने में आसानी हो गई है। (5) **भूमि सुधार कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में सहायता**—जमींदारी उन्मूलन होने से भूमि सुधार के अन्य कार्यक्रमों का क्रियान्वयन आसान हो गया है। अब चकबन्दी, सहकारी खेती, अधिकतम जोत नियम, आदि को आसानी से लागू किया जा सका है। (6) **सामन्तवाद का अन्त**—जमींदारी के अन्त से सामन्तवाद का अन्त हो गया है और अब कृषक स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य कर रहे हैं। इस प्रकार अब किसान लोकतन्त्र व समाजवाद में हिस्सेदार बन गए हैं। (7) **पंचायतों की आय में वृद्धि**—जमींदारी उन्मूलन से ग्राम पंचायतों को बंजर भूमि व चरागाह, आदि को प्रबन्ध करने का उत्तरदायित्व मिल गया है जिससे उनकी आय में वृद्धि होने लगी है। (8) **किसानों की उन्नति**—जमींदारी प्रथा की समाप्ति ने किसानों को अपनी उन्नति करने का अवसर प्रदान कर दिया है, क्योंकि अब न तो इनका शोषण होता है और न उन्हें उनकी भूमि से बेदखल किया जा सकता है। अब वे पैदावार बढ़ाकर अपनी उन्नति करने के लिए स्वतन्त्र हैं। (9) **भूमिहीन कृषकों को भूमि**—जमींदारी उन्मूलन के कारण अब तक लगभग 60 लाख हेक्टेयर भूमि को इन भूमिहीन कृषकों में बांटा जा चुका है।

अन्त में हम कह सकते हैं कि जमींदारी उन्मूलन से भूमि व्यवस्था में सुधार हुआ है और जमींदारों का वर्ग जो काफी प्रबल था वह अब पूर्णतया निर्बल होकर समाप्त हो चुका है। इस कदम को हम समाजवादी समाज की दिशा में एक कदम कह सकते हैं।

(II) **काश्तकारी व्यवस्था में सुधार** (Reforms in Tenancy System)

विभिन्न जमींदारी उन्मूलन अधिनियमों के अन्तर्गत छूट दी गई है कि विधवाएं, अवयस्क, सैनिक या असमर्थ लोग अपनी भूमि को दूसरे को जोतने के लिए दे सकते हैं। इस प्रणाली या व्यवस्था को पट्टेदारी कहते हैं। पट्टेदारी व्यवस्था में भी सुधार की आवश्यकता को महसूस करते हुए यह आवश्यक समझा गया कि इस ओर भी कुछ प्रयत्न किये जाएं। अतः इस ओर निम्नांकित सुधार किये गए हैं :

(1) **लगान का नियमन**—लगान-नियमन के कानून बनने के पूर्व पट्टेदार को सामान्यतः कुल उपज का आधा भाग भूमि के मालिक को लगान के रूप में देना पड़ता था। अतः प्रथम योजना में इस बात की सिफारिश की गई कि ऐसा लगान कुल उपज के 20 से 25 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए। बाद में विभिन्न राज्यों ने इस सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न अधिनियम बनाये जिनके अनुसार लगान की उचित दर पंजाब व हरियाणा में 33.5 प्रतिशत, मद्रास में सिंचित भूमि का 40 प्रतिशत तथा शुष्क भूमि का 25 प्रतिशत, आन्ध्र में सिंचित भूमि का